

कक्षा - 12 वीं
विषय - हिंदी

18

date 15/4/20
read chapter

● श्रम विभाजन और जाति-प्रथा

● मेरी कल्पना का आदर्श-समाज

-बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर

लेखक परिचय

Sanjay

जीवन परिचय—मानव-मुक्ति के पुरोधा बाबा साहब भीमराव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 ई. में मध्य प्रदेश के महू नामक स्थान पर हुआ। इनके पिता का नाम श्रीराम जी तथा माता का नाम भीमाबाई था। 1907 ई. में हाई स्कूल परीक्षा पास करने के बाद इनका विवाह रमाबाई के साथ हुआ। प्राथमिक शिक्षा के बाद बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन पर उच्चतर शिक्षा के लिए न्यूयार्क और फिर वहाँ से लंदन गए। इन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। 1923 ई. में इन्होंने मुंबई के उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की। 1924 ई. में इन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। ये संविधान की प्रारूप समिति के सदस्य थे। दिसंबर, 1956 ई. में दिल्ली में इनका देहावसान हो गया।

रचनाएँ—बाबा साहब आंबेडकर बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न व्यक्ति थे। हिंदी में उनका संपूर्ण साहित्य भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय ने बाबा साहब आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय नाम से 21 खंडों में प्रकाशित किया है। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

पुस्तकें व भाषण—दो कास्ट्स इन इंडिया, देयर मेकेनिज्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट (1917), द अनटचेबल्स, हू आर दे? (1948), हू आर द शूद्राज (1946), बुद्धा एंड हिज धम्मा (1957), थाट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्ट्रेस (1955), द प्रॉब्लम ऑफ़ द रुपी (1923), द एबोलुशन ऑफ़ प्रोविंशियल फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया (1916), द राइज एंड फॉल ऑफ़ द हिंदू वीमैन (1965), एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट (1936), लेबर एंड पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी (1943), बुद्धिज्म एंड कम्युनिज्म (1956)।

पत्रिका-संपादन—मूक नायक, बहिष्कृत भारत, जनता।

साहित्यिक विशेषताएँ—बाबा साहब आधुनिक भारतीय चिंतकों में से एक थे। उन्होंने संस्कृत का धार्मिक, पौराणिक और वैदिक साहित्य का अध्ययन किया तथा ऐतिहासिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं। वे इतिहास-मीमांसक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा धर्म-दर्शन के व्याख्याता बनकर उभरे। स्वदेश में कुछ समय उन्होंने वकालत भी की। उन्होंने अछूतों, स्त्रियों व मजदूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया।

डॉ. भीमराव आंबेडकर भारत संविधान के निर्माताओं में से एक हैं। उन्होंने जीवनभर दलितों की मुक्ति व सामाजिक समता के लिए संघर्ष किया। उनका पूरा लेखन इसी संघर्ष व सरोकार से जुड़ा हुआ है। स्वयं डॉ. आंबेडकर को बचपन से ही जाति आधारित उत्पीड़न, शोषण व अपमान से गुजरना पड़ा था। व्यापक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बल पर उन्होंने हिंदुस्तान के स्वाधीनता संग्राम में एक नयी अंतर्वस्तु प्रस्तुत करने का काम किया। उनका मानना था कि दासता का सबसे व्यापक व गहन रूप सामाजिक दासता है और उसके उन्मूलन के बिना कोई भी स्वतंत्रता कुछ लोगों का विशेषाधिकार रहेगी, इसलिए अधूरी होगी।

पाठ का प्रतिपाद्य एवं सारांश

1. श्रम विभाजन और जाति-प्रथा

प्रतिपाद्य—यह पाठ आंबेडकर के विख्यात भाषण एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट (1936) पर आधारित है। इसका अनुवाद ललई सिंह यादव ने जाति-भेद का उच्छेद शीर्षक के अंतर्गत किया। यह भाषण जाति-पाँति तोड़क मंडल (लाहौर) के वार्षिक सम्मेलन (1936) के अध्यक्षीय भाषण के रूप में तैयार किया गया था, परंतु इसकी क्रांतिकारी दृष्टि से आयोजकों की पूर्ण सहमति न बन सकने के कारण सम्मेलन स्थगित हो गया।

सारांश—लेखक कहता है कि आज के युग में भी जातिवाद के पोषकों की कमी नहीं है। समर्थक कहते हैं कि आधुनिक सभ्य समाज कार्यकुशलता के लिए श्रम विभाजन को आवश्यक मानता है। इसमें आपत्ति यह है कि जाति-प्रथा श्रम विभाजन के साथ-साथ श्रमिक विभाजन का भी रूप लिए हुए है। श्रम विभाजन सभ्य समाज की आवश्यकता हो सकती है, परंतु यह श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति-प्रथा श्रमिकों के अस्वाभाविक विभाजन के साथ-साथ विभाजित विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है।

जाति-प्रथा को यदि हम विनाश करने के लिए लेना जाए तो यह भी मानव की रुचि पर आधारित नहीं है। सक्षम समाज को चाहिए कि वह लोगों को अपनी रुचि का पेशा करने के लिए सक्षम बनाए। जाति-प्रथा में यह दोष है कि इसमें मनुष्य का पेशा उसके प्रशिक्षण या उसकी निजी क्षमता के आधार पर न करके उसके माता-पिता के सामाजिक स्तर से किया जाता है। यह मनुष्य को जीवन-भर के लिए एक पेशे में बाँध देती है। ऐसी दशा में उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में परिवर्तन से भूखों मरने की नीबत आ जाती है। हिंदू धर्म में पेशा बदलने की अनुमति न होने के कारण कई बार बेरोजगारी की समस्या उभर जाती है। जाति-प्रथा का श्रम विभाजन मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता। इसमें व्यक्तिगत रुचि भावना का कोई स्थान नहीं होता। पूर्व लेख ही इसका आधार है। ऐसी स्थिति में लोग काम में अरुचि दिखलाते हैं। अतः आर्थिक पहलू से भी जाति-प्रथा हानिकारक है क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणा, रुचि व आत्म-शक्ति को दबाकर उन्हें स्वाभाविक नियमों में जड़कर निष्क्रिय बना देती है।

2. मेरी कल्पना का आदर्श-समाज

प्रतिपाद्य—इस पाठ में, लेखक ने बताया है कि आदर्श समाज में तीन तत्त्व अनिवार्यतः होने चाहिए—समानता, स्वतंत्रता व बंधुता। इनसे लोकतंत्र सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया के अर्थ तक पहुँच सकता है।

सारांश—लेखक का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता व भ्रातृता पर आधारित होगा। समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए कि कोई भी परिवर्तन समाज में तुरंत प्रसारित हो जाए। ऐसे समाज में सबका सब कार्यों में भाग होना चाहिए तथा सबको सबकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए। सबको संपर्क के साधन व अवसर मिलने चाहिए। यही लोकतंत्र है। लोकतंत्र मूलतः सामाजिक जीवनचर्या की एक रीति व समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है।

आवागमन, जीवन व शारीरिक सुरक्षा की स्वाधीनता, संपत्ति, जीविकोपार्जन के लिए जरूरी औजार व सामग्री रखने के अधिकार की स्वतंत्रता पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होती, परंतु मनुष्य के सक्षम व प्रभावशाली प्रयोग की स्वतंत्रता देने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। इसके लिए व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता देनी होती है। इस स्वतंत्रता के अभाव में व्यक्ति 'दासता' में जकड़ा रहेगा। 'दासता' केवल कानूनी नहीं होती। यह वहाँ भी है जहाँ कुछ लोगों को दूसरों द्वारा निर्धारित व्यवहार व कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है।

फ्रांसीसी क्रांति के नारे में 'समता' शब्द सदैव विवादित रहा है। समता के आलोचक कहते हैं कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते। यह सत्य होते हुए भी महत्त्व नहीं रखता क्योंकि समता असंभव होते हुए भी नियामक सिद्धांत है। मनुष्य की क्षमता तीन बातों पर निर्भर है—1. शारीरिक वंश परंपरा, 2. सामाजिक उत्तराधिकार, 3. मनुष्य के अपने प्रयत्न। इन तीनों दृष्टियों से मनुष्य समान नहीं होते, परंतु क्या इन तीनों कारणों से व्यक्ति से असमान व्यवहार करना चाहिए। असमान प्रयत्न के कारण असमान व्यवहार अनुचित नहीं है, परंतु हर व्यक्ति को विकास करने के अवसर मिलने चाहिए।

लेखक का मानना है कि उच्च वर्ग के लोग उत्तम व्यवहार के मुकाबले में निश्चय ही जीतेंगे क्योंकि उत्तम व्यवहार का निर्णय भी संपन्न को ही करना होगा। प्रयास मनुष्य के वश में है, परंतु वंश व सामाजिक प्रतिष्ठा उसके वश में नहीं है। अतः वंश और सामाजिक के नाम पर असमानता अनुचित है।

एक राजनेता को अनेक लोगों से मिलना होता है। उसके पास हर व्यक्ति के लिए अलग व्यवहार करने का समय नहीं होता। ऐसे में व्यवहार्य सिद्धांत का पालन करता है कि सब मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जाए। वह सबसे व्यवहार इसलिए करता है क्योंकि वर्गीकरण व श्रेणीकरण संभव नहीं है। समता एक काल्पनिक वस्तु है, फिर भी राजनीतिज्ञों के लिए यही एक मात्र उपाय व मार्ग